ओ३म्
अनमोल वचन
ॐ
संकलनकर्त्री
सुश्री अरुणा आर्या

ओ३म्

अनमोल वचन

[पूज्या आचार्या मेधा देवी जी की ६८वीं जयन्ती के अवसर पर]

संकलनकर्त्री

सुश्री अरुणा आर्या

पुस्तक प्राप्ति स्थान–

(1) **पाणिनि कन्या महाविद्यालय**
पो0- महमूरगंज, तुलसीपुर, वाराणसी- 10
फोन नं.- (0542) 2363340
मो0- 91+9235539740

(2) **सुश्री अरुणा आर्या**
मु.+पो.- खरोरा (देना बैंक के सामने)
मेन रोड खरोरा, रायपुर (छत्तीसगढ़)- 493225
मो.- 7489523219

लोकार्पणम्

इस सृष्टि में बहुत विविधता है रस है और आनन्द भी है क्योंकि इस सृष्टि का रचयिता वह परमेश्वर रसस्वरूप आनन्दरूप है। इस संसार में जहाँ अनेक रंगबिरंगे विविध स्वाद वाले फल-फूल, अन्न, ओषधि, वनस्पति, नदियाँ, झरने, पर्वत आदि हैं। वहीं नाना प्रकार के पशु-पक्षी, कीट-पतंग भी हैं जो सूक्ष्म से सूक्ष्म और दीर्घ से दीर्घ भीमकाय तक हैं। उन्हीं के अन्तर्गत मनुष्य भी है जो इन सभी मूक प्राणियों का स्वयं को राजाधिराज समझता है। और है भी, हो सकता भी है यदि वह उनको संरक्षण दे और इनका लाभ सब मनुष्यों को दे।

बात विविधता की करें! तो पशु-पक्षियों की विविधता उनकी प्रजाति के कारण है किन्तु मनुष्य जो कि एक ही प्रजाति का है उसमें इतनी विविधता, क्यों? यह प्रश्न है। उनमें से कुछ विविधतायें तो नैसर्गिक हैं जैसे– मोटा-पतला, काला-गोरा, नाटा-लम्बा आदि पर अनेक विविधतायें ऐसी हैं जो मनुष्य की स्वभावगत हैं, इनके अतिरिक्त अमीरी-गरीबी का भेद बहुत बड़ा

है आखिर इसका कारण क्या है? सांख्य दर्शन के रचयिता कपिल मुनि उत्तर देते हैं कि इसका कारण हम स्वयं हैं। उन्होंने बताया कि–

कर्म वैचित्र्यात् सृष्टि वैचित्र्यम्।

(सां.द. 6/41)

हमारे अपने कर्मों के कारण ही यह सारी विविधता है। पशु-पक्षी कीट-पतंग होना भी हमारे कर्मों का ही परिणाम है। ध्यान रहे! कि मनुष्य योनि के अतिरिक्त जितनी भी योनियाँ हैं वे भोग योनि हैं। एक मनुष्य योनि ही ऐसी है जिसमें वह अपने कर्मों को सुधार सकता है, अपने जीवन की कमियों को दूर कर सकता है, अपनी परिस्थितियों को बदल सकता है। पर ऐसा कैसे संभव है? तो इसका एकमात्र उपाय सद्ज्ञान और सद्विचार है। क्योंकि मनुष्य जैसा सोचेगा वैसा ही प्रयास-कर्म करेगा और जैसा प्रयास करेगा वह वैसा ही बन जायेगा। इसलिये अब दूसरों को कोसना बन्द करिये! और आप जो बनना चाहते हैं उसके लिये आज से ही प्रयास आरम्भ कर दीजिये। आप देखेंगे कि आप वैसे ही बन रहे हैं।

सुश्री अरुणा जी द्वारा इन अनमोल वचनों का संग्रह इसी

उद्देश्य से किया गया है इन्होंने सत्संगति सद्ज्ञान और स्वाध्याय के द्वारा जो प्राप्त किया उसे संकलित किया है, जो कि आपके सामने है इसकी कीमत उसको जीवन में धारण करना है। भक्त-हृदय अरुणा जी इसके लिये धन्यवाद की पात्र हैं। वे चाहती हैं हम अपने साथ-साथ जितना हो सके दूसरों को भी सद्ज्ञान के मोती देते चलें, यह लघु संकलन इसी का परिणाम है। उनकी स्वाध्याय की यह प्रवृत्ति सदा बनी रहे यही कामना है।

धन्यवाद

नन्दिता शास्त्री चतुर्वेदी
(आचार्या)
पाणिनि कन्या महाविद्यालय,
महमूरगंज, वाराणसी- 10

आरोह तमसो ज्योतिः

(ए मनुष्य! अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ो!)

पञ्च महाभूतों के समायोजन से निर्मित यह मानव शरीर परमेश्वर की अनुपम कृति है तथा उसमें चेतन आत्मा का दिव्य समावेश ही जीवन है। जो कि अनेक जन्म के पुण्य कर्मों का प्रसाद है। जिसका उद्देश्य शुभ श्रेष्ठ कर्म करते हुए मोक्ष की प्राप्ति परमानन्द की प्राप्ति है। मेधा बुद्धि से युक्त मानव जीवन का स्थान सृष्टि में सर्वोपरि है। (कर्म करने की पूर्ण स्वतन्त्रता मानव को प्राप्त है) कर्म अनेक जन्म जन्मान्तरों एवं योनियों में भ्रमण के उपरान्त मानव योनि में उत्तम कर्म करने का सुअवसर प्राप्त होता है। परमपिता परमेश्वर ने मानव को यह दिव्य चेतना युक्त शरीर इसी लिये प्रदान किया है। तभी तो कहा- श्रेष्ठतमाय कर्मणे. (यजु. 1/1) अर्थात् ऐ मानव! तू इस संसार में श्रेष्ठ कर्म करने हेतु आया है। और श्रेष्ठ कर्म कौन-कौन से हैं यह वेदों में ही बताया है। किन्तु आज का भौतिकवादी मानव अपने लक्ष्य से भटक गया है केवल शारीरिक सुखों की पूर्ति करना ही एकमात्र उद्देश्य रह गया है किन्तु दिव्य चेतन आत्मा जो उसके शरीर में निरन्तर वास कर रहा है जिसके कारण से मानव सांस लेता है देखता है सुनता है, खाता है, पीता है, चलता है, सुख दुःख का अनुभव करता है उसे एकदम भूल गया, उसकी ओर

ध्यान देने का एक मिनट भी समय नहीं उसके सुख का उसकी उन्नति का कोई चिन्तन नहीं। परिणाम स्वरूप अनेक सुख साधना के होते हुए भी, व्यक्ति अशान्त है दुःखी है, परिवार समाज, राष्ट्र एवं सम्पूर्ण विश्व में, अशान्ति अराजकता का वातावरण उपस्थित है।

आज के भौतिकवादी, अर्थप्रधान युग में किसी के पास इतना समय नहीं कि वेदों का अध्ययन करें, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करें, आत्म कल्याण करते हुए परमात्म तत्त्व को प्राप्त करे। साधारण मनुष्य के पास वेदमन्त्रों के तथा वेदानुकूल अन्य ग्रन्थों के श्लोकादिकों के गूढ़ अर्थ को समझने का साधन नहीं समय नहीं, सामर्थ्य नहीं कि सम्पूर्ण शास्त्रों का अध्ययन किया ही जाये। अतः कोई लघु उपाय ही आत्मकल्याण रूपी बृहत् फलावाप्ति के लिये होना चाहिये क्योंकि आत्मकल्याण के लिये वैदों की शिक्षाओं में अपने जीवन में से एक सद्विचार एक अनमोल वचन ही भटके हुए मानव की जीवन दिशा बदल देता है ऐसे अनेकों उदाहरण इतिहास में प्राप्त होते है।

इस लघु पुस्तिका **"पुराणों के अनमोल वचन"** की लेखिका सरल निःश्छल हृदय प्रभु भक्त **सुश्री अरुणा आर्या** भी इनमें से एक है इनका जीवन भी आर्यजगत् की प्रसिद्ध वेदविदुषी **पाणिनि कन्या महाविद्यालय** की संस्थापिका पूज्या आचार्या डॉ. प्रज्ञा देवी जी के प्रवचनों से परिवर्तित हुआ

और वैदिक आर्ष ग्रन्थों के स्वाध्याय की प्रवृत्ति हुई। यह पुस्तिका भी उसी स्वाध्याय का, परिवर्तन का परिणाम है जो आपके हाथों में प्रस्तुत है। यह सत्य है कि मनुष्य सूर्य बनकर सम्पूर्ण भूमण्डल को एक साथ प्रकाशित नहीं कर सकता किन्तु दीपक बन कर ज्योति की लौ से अन्धकार को दूर करने का प्रयास तो कर ही सकता है वेद में भी कहा- **आरोह तमसो ज्योतिः।** बस! यह पुस्तिका वेद की इसी आज्ञा का पालन है।

यह पुस्तिका आकार में छोटी है किन्तु ज्ञान का अनमोल खजाना है, इसमें ज्ञान की वो अमूल्य मोतियाँ हैं जिन्हें जीवन में धारण करने से जीवन शुद्ध सात्विक पवित्र अन्तःकरण से युक्त हो जायेगा धन्य हो जायेगा तथा परमेश्वर के सान्निध्य को प्राप्त कर मोक्ष पथ का पथिक बन सकेगा। इसी आशा से यह पुस्तिका आपके हाथों में समर्पित है।

बहन अरुणा जी धन्य व इसी प्रकार अपने स्वाध्याय चिन्तन, आध्यात्मिक ज्योति से ज्योति जलाते चलें ज्ञान की गंगा बहाते चलें। परमपिता परमेश्वर से अरूणा जी के दीर्घ एवं निरामण्य जीवन की कामना करती हूँ।

डा. प्रीति विमर्शिनी

पाणिनि कन्या महाविद्यालय,

महमूरगंज, वाराणसी- 10

पुस्तक समीक्षा

यह पुस्तक "पुराणों के अनमोल वचन" एक सहज एवं सरल साधन प्रदान करता है अपने जीवन में नैतिक मूल्यों के महत्व को समझने की। आज के इस व्यस्त जीवन शैली में जहाँ व्यक्ति अपने जीवन यापन के साधनों के संग्रह में उलझा हुआ है और अपनी जड़ों से जुदा हो गया है वहाँ लेखिका सुश्री अरुणा आर्या जी जी का यह प्रयास सराहनीय है। इस पुस्तक के द्वारा हमें भारतवर्ष के महान् पुराणों का एक प्रतिबिम्ब मिलता है। इस संक्षिप्त संग्रह से हम अपने जीवन के अर्थ को समझ कर आदर्श बन सकते हैं।

हनी गुप्ता (बी.ई.)
श्याम नगर, रायपुर (छत्तीसगढ़)
मो.- 9669274176

दो शब्द

मानव जीवन अनमोल है। इस अनमोल जीवन में जब अध्यात्म की धारा बहती है तब मनुष्य, मनुष्य नहीं रहता बल्कि वह एक महान् पुरुष बन के समाज के सामने दृढ़ संकल्पित होकर खड़ा हो जाता है। समाज देश को सुधारने के लिए, अपनी आत्मा के भावों को ज्ञान के द्वारा निरोहित करता है, ताकि संसार के हर व्यक्ति तक उनका ज्ञान पहुँचे। महापुरुषों का यही स्वाभाविक प्रयास रहता है।

इस पुस्तक का नाम **"अनमोल वचन है"** इसलिए क्योंकि इस पुस्तक के जो अनमोल शब्द हैं, वे देवी भागवत, भागवत पुराण और वैदिक ग्रन्थों से लिये गये हैं।

हमें आशा है कि पाठकगण इन "अनमोल वचनों" को ध्यान से पढ़कर मनन करेंगे एवं आध्यात्मिक लाभ उठायेंगे।

इस पुस्तक को छपवाने में जिन लोगों ने सहयोग दिया है, उनके नाम हैं– श्रीमती विद्या-नारायण गुप्ता (तिलकेजा), श्रीमती राजकुमारी-राजेन्द्र गुप्ता (बसना), श्रीमती सुनीता गुप्ता (अकलतरा), कुमारी हनी गुप्ता (श्याम नगर, रायपुर), श्रीमती प्रेमलता (वाराणसी)। इनका मैं हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ।

संकलनकर्त्री–
सुश्री अरुणा आर्या

ओ३म्

* महपुरुषों के चरित्र से केवल गुण ही ग्रहण करना चाहिए।
* वेदोक्त कर्म करने वाले गृहस्थ के लिए क्या असाध्य रह जात है। वह स्वर्ग, मोक्ष अथवा उत्तम कुल में जन्म जो कुछ भी चाहता है, वह हो जाता है।
* मूर्ख के साथ स्थापित किया गया सम्पर्क विष से भी अधिक अनिष्ट कर होता है और इसके विपरीत विद्वानों का सम्पर्क पीयूषरस के तुल्य माना गया है।
* दूसरों को उपदेश देने में अनेक लोग चतुर होते हैं, परन्तु कार्य उपस्थित होने पर (उपदेशानुसार) स्वयं आचरण करने वाला दुर्लभ होता है।
* जो कर्म पापरहित तथा अहंकार रहित होकर किया जाता है। उस कर्म को वैदिक विद्वान् मनीणीजन किये हुए के समान ही कहते हैं।
* जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णा, द्वेष, राग, मद, परदोष-दर्शन, ईर्ष्या, सहनशीलता का अभाव और अशान्ति आदि है, वे पापमय शरीर के विकार है। जब तक ये पाप शरीर से

नहीं निकलते तब तक मनुष्य पापी ही रहता है।

* शास्त्र के अवलोकन से सत्वगुण समुन्नत होता है तथा बड़ी तेजी से बढ़ता है। उसका फल यह होता हे कि तामस पदार्थों के प्रति वैराग्य हो जाता है।

* जब सत्वगुण बढ़ता है, उस समय बुद्धि धर्म में स्थित रहती है। उस समय वह रजोगुण या तमोगुण से उत्पन्न बाह्य विषयों का चिन्तन नहीं करती है।

* वेदज्ञ ब्राह्मण जिसका अन्न खाकर वेदाभ्यास करता है उसकें पूर्वक परम प्रसन्न होकर स्वर्ग में विहार करते हैं।

* सर्वप्रथम मन को परिशुद्ध तथा गुण से रहित बनाना चाहिए। मन के शुद्ध हो जाने पर शरीर की शुद्धि स्वतः हो जाती है, इसमें संशय नहीं हैं।

* जब मनुष्य का मन इन्द्रियों के विषयों का परित्याग करके पवित्र हो जाता है, तभी वह उस मानस यज्ञ को करने का अधिकारी होताहै।

* किसी दुःखी प्राणी की रक्षा करने में यज्ञ करने से भी अधिक पुण्य बताया है।

* लोभ तथा मोह से घिरे हुए लोगों का तीर्थ, दान, अध्ययन सब व्यर्थ हो जाता है, उनका किया हुआ वह सारा कर्म न

करने के समान हो जाता है।

* अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष को चाहिये कि वह तुच्छ शत्रु की भी उपेक्षा न करे, राजयक्ष्मा रोग के समान बढ़कर मृत्यु का कारण बन जाता हे।

* सुखों तथा दुःखों के भोग से छुटकारा कहाँ वह तो निःसदेह भोगना पड़ता है।

* सुख के बाद दुःख तथा दुःख के बाद सुख पहिये की धुरी की तरह आया जाया करते हैं। सदा एक स्थिति नहीं रहती। सुख-दुःख के आने पर जिसका मन कातर हो जाता है, वह शोक सागर में निमग्न रहता है और कभी सुखी नहीं रह सकता।

* दुख आने पर शोक नहीं करना चाहिए। विज्ञ पुरुष को चाहिए कि ऐसी परिस्थिति में मन को उद्यमशील बनाकर समय की प्रतीक्षा करता रहे।

* मनुष्य तप, यज्ञ तथा दान के द्वारा इन्द्रत्व को प्राप्त हो जाता है। और पुण्य क्षीण होने पर इन्द्र भी च्युत हो जाता है।

* काम, क्रोध, अमर्ष, शोक, वैर, प्रेम, सुख, दुःख, भय दीनता, सनलता, पाप, पुण्य, वचन, मारन, पोषण, चलन, ताप, विमर्श, आत्मश्लाघा, लोभ, दम्भ, मोह, कपट और चिन्ता

ये तथा अन्य भी नाना प्रकार के भाव मनुष्य जन्म में विद्यमान रहते हैं।

* गर्भवास में दुःख, जन्म ग्रहण में दुःख, बाल्यावस्था में दुःख, यौवनावस्था में काम जनित दुःख एवं गृहस्थ जीवन में तो बहुत बड़ा दुःख होता है।

* संसार में लोभ से बढ़कर अपवित्र तथा निन्दित अन्य कोई चीज नहीं है, यह सबसे बड़ा शत्रु है।

* लोभ की ऐसी महिमा है कि वह महान् से महान् लोगों को भी नहीं छोड़ता है। लोभ तो निश्चय ही पापों की खान-नरक की प्राप्ति कराने वाला और सर्वथा अनुचित है।

* बड़ों की सेवा से मनुष्य पुण्य तथा अक्षत गति प्राप्त कर लेता है।

* विषयासक्त मनुष्य में राग आ ही जाता है और अपना स्वार्थ भंग होने पर उसमें निःसन्देह राग-द्वेष की बहुलता हो जाती है। द्वेष के कारण अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये असत्य भाषण करना पड़ता हैं

* यदि कोई मनुष्य द्रोह करने वाले के प्रति द्रोह भाव रखे तो यह समानता की बात है, किन्तु द्रोह न करने वाले तथा शान्त

स्वभाव वाले के प्रति विद्वेष रखने को नीचता कहा गया है।

* सज्जन पुरुषों के लिये हर समय सत्ययुग दिखलायी पड़ता है और दुष्ट लोगों के लिये सर्वदा कलियुग ही रहता हैं

* जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अंधकार नहीं ठहरता, उसी प्रकार अहंकार रूपी अंकुर के समक्ष पुण्य नहीं ठहर सकता।

* काष्ठ तथा लोहे की जंजीर में बंधा हुआ व्यक्ति बंधन मुक्त हो सकता है, किन्तु अहंकार से बंधा व्यक्ति कभी भी नहीं छुट सकता।

* मन, वचन कर्म, से शुद्ध प्राणियों के लिये तो. पद-पद पर तीर्थ है, किन्तु दूषित मन वाले प्राणियों के लिये गंगा भी मगध से अधिक अपवित्र हो जाती है।

* परम संतोषी लोगों को सभी जगह सदा सुख ही सुख है, किन्तु लोभयुक्त मन वाले लोगों को तीनों लोकों का राज्य मिल जाने पर भी सुख नहीं प्राप्त होता है।

* विद्या से प्राणी मुक्त होता है और अविद्या से बंधन में पड़ता है।

* बुद्धिमान् मनुष्य को पापकर्म से भी अपने शरीर की रक्षा कर लेनी चाहिये। बाद में प्रायश्चित कर लेने से उस पाप की शुद्धि

हो जाती है। अतः चतुर लोगों को चाहिये कि पापकर्म से भी

अपने प्राण की रक्षा कर लें।

* नीच के साथ की गयी संधि व्यर्थ सिद्ध होती है अतएव बार-बार विचार करके केवल सज्जनों के साथ ही संधि करनी चाहिए।

* सर्वदा भलीभाँति सोच-समझकर बुद्धि मान मनुष्य को कार्य करना चाहिये क्योंकि बिना विचार किये अचानक किया गया कार्य हर तरह से दुःखदायक ही होता है।

* नीति से हटकर किया गया कार्य अज्ञात औषधि के सेवन से उत्पन्न होने वाले कष्ट की भाँति विपरीत फल देने वाला होता है।

* पुरुषार्थ करने पर भी यदि सिद्धि नहीं मिलती है तो इसमें उस व्यक्ति का कोई अपराध नहीं है, क्योंकि प्रत्येक शरीरधारी सदा दैव के अधीन रहता है।

* कार्य की सिद्धि न सेना से, न मंत्र से, न मंत्रणा से, न रथ से और न तो आयुध से ही मिलती हे। सफलता तो निश्चित रूप से दैव के अधीन रहती है।

* उद्योग करने के बाद सुख प्राप्त हो अथवा दुःख इन दोनों के विषय में किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। दुःख

आने पर अपने से अधिक दुःखी जनों को तथा सुख आने पर अधिक सुखी व्यक्ति को देखना चाहिए।

* अधीर हो जाने से जैसा दुःख प्राप्त होता है, वैसा दुःख धैर्य धारण करने से कभी नहीं होता। किन्तु सुख तथा दुःख के अवसर पर सहनशील बने रहना अति दुर्लभ है।

* सुख के उपभोग से पुण्य का क्षय होता है और दुःख भोगने से पाप का नाश होता है। अतएव बुद्धिमान् पुरुषों को सुख-क्षय की स्थिति में हर प्रकार से प्रसन्नता का अनुभव करना चाहिए।

* उद्योग के बिना न राज्य, न सुख और न तो यश की ही प्राप्ति होती है। उद्यमहीन की प्रशंसा न तो कायर लोग करते हैं और न उद्योग परायण।

* बुद्धिमान् लोगों को सदा यत्नपरायण होना चाहिये। कार्य की सिद्धि तो निश्चित रूप से सदा दैव के ही अधीन रहती है।

* अपनी शक्ति तथा निर्बलता का सम्यक् ज्ञान किये बिना विवेक का त्याग करके दुःसाहसपूर्ण कार्य करने वाला व्यक्ति पतन को प्राप्त होता है।

* मधुरता से युक्त वचन भला किसके लिये प्रीतिकारक नहीं होता।

* जब दैव प्रतिकूल होता है, तब एक तिनका भी वज्र-तुल्य हो

जाता है और जब वह दैव अनुकूल होता है, तब वज्र भी तूल (रूई) के समान कोमल हो जाता है।

* जब काल योग से देह के साथ जीव का सम्बन्ध स्थापित होता है, उसी समय विधाता के द्वारा सुख, दुःख तथा मृत्यु सब कुछ निर्धारित कर दिया जाता है। दैव ने जिस प्राणी की मृत्य जिस प्रकार से निश्चित कर दी है, उसकी मृत्यु उसी प्रकार से निश्चित कर दी है, उसकी मृत्यु उसी प्रकार से होगी, इसके विपरीत नहीं, यह पूर्ण सत्य है।

* सत्य वचन कल्याणकारी होता है और प्रिय वचन (प्रायः) अहितकर होता हे। इस लोक में अप्रिय वचन भी मनुष्यों के लिये उसी प्रकार हितकारक होता है, जैसे औषधि अरुचिकर होते हुए भी मनुष्यों के रोगों का नाश करने वाली होती है।

* सत्य बात को सुनने तथा मानने वाला दुर्लभ है। सत्य बोलने वाला तो परम दुर्लभ हे, किन्तु चाटुकारितापूर्ण बातें करने वाले बहुत से लोग है।

* प्राणियों का जन्म तथा मरण दैव के अधीन है। तीनों लोकों में कोई भी व्यक्ति इसके विपरीत कुछ भी करने में समर्थ नहीं है।

* इस संसार में समान कुल तथा आचार वालों का परस्पर सम्बन्ध सुखदायक होता है, इसके विपरीत बिना सोचे समझे यदि सम्बन्ध हो जाता है तो वह बड़ा दुःखदायी होता है।

* सर्वदा उत्साह से सम्पन्न रहना चाहिये, क्योंकि उत्साह ही वीररस का स्थायी भाव है।

* समय बड़ा बलवान् होता है, वही परतन्त्र मनुष्यों के पुण्य तथा पाप के अनुसार सदा उनके सुखों-दुःखों का निर्माण करता है।

* युद्ध दुःख तथा संताप को बढ़ाने वाला और सम्पूर्ण सुखों का विघातक होता है।

* आत्म ज्ञान सम्बन्धी सुख को "नित्य और भोग जनित सुख का अनित्य" माना गया है। वेद और शास्त्र के तत्त्व का चिन्तन करने वाले लोगों को चाहिये कि उस विनाशशील अनित्य सुख को त्याग दें।

* सगुण प्राणी ही कार्य करता है, निर्गुण से सगुण कार्य नहीं हो सकता, क्योंकि वे सभी गुण मिश्रित हैं, वे पृथक्-पृथक् नहीं रहते। इसी कारण किसी की भी बुद्धि सत्य तथा सनातन धर्म में टिक नहीं पाती।

* भला इस उत्पन्न हुए पुत्र से क्या लाभ? जो पैदा होकर अपने

पिता का दुःख न समझे तथा उसको दूर करने का उपाय न

कर सके। ऐसा कुपुत्र तो पूर्व जन्म के किसी ऋण को वापस लेने के लिये यहाँ आता है। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।

* प्रयत्नपूर्वक उद्यम तो करना ही चाहिये, यदि सफलता न मिले तो बुद्धिमान् मनुष्य मन में विश्वास कर ले कि दैव यहाँ प्रबल है।

* इस संसार में सुख ग्रहण करना चाहिये और दुःख का परित्याग करना चाहिये यही सर्व मान्य नियम है।

* काल की गति बड़ी ही विचित्र होती है, जो एक साधारण मनुष्य को राजा बना देता हे और उसके बाद राजा को भिखारी बना देता है। वही काल दाता को याचक बलवान् को निर्बल, पण्डित को अज्ञानी और वीर को अत्यन्त कायर बना देता है।

* समय ही मनुष्य को धर्मात्मा तथा ज्ञानवान् बनाता है और फिर उसी व्यक्ति को पापी तथा असत्यल्प ज्ञान से भी हीन बना देता है।

* काल की गति को पूर्ण रूप से समझना ज्ञानियों के लिये भी अत्यन्त कठिन है। (काल की प्रेरणा से) तृण वज्र बन जाता

है, वज्र तृण बन जाता है और बलशाली प्राणी बलहीन हो जाता है, दैव की ऐसी विचित्र गति है।

* शास्त्रों का तत्त्व जानने वाले विद्वान् तथा बुद्धिमान् पुरुषों को चाहिये कि दुःख देने वाले कार्यों का दूर से ही त्याग कर दें और सुख प्रदान करने वाले कार्यों का सेवन करें।

* जगत् में जय तथा पराजय दैव के अधीन होता है। बुद्धिमान् को चाहिये कि अल्प प्रयोजन के लिए, भारी कण्ट न उठाये।

* बिना उद्यम किये मनोरथ कभी सिद्ध नहीं होते।

* यह आशा बड़ी बलवती होती हे, यह प्राणियों को कभी नहीं छोड़त है। यहाँ तक कि अंगहीन, बलहीन, नष्टप्राय, असहाय तथा सचेत प्राणी भी आशा के प्रभाव से छूट नहीं पाता है।

* काल तो निमित्तमात्र है, अपितु (इसकी तुलना में) दैव अधिक बलवान् है। सब कुछ दैव निर्मित है, इसके विपरीत कुछ नहीं होता।

* जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है तथा मरने वाले का जन्म निश्चित है। अतः इस अनित्य शरीर के द्वारा अपनी स्थिर कीर्त्ति की रक्षा करनी चाहिये।

* पाप बुद्धि पुरुषों पर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये, क्योंकि

जो मनुष्य लोभ के वशीभूत होते है वे क्या-क्या नहीं कर बैठते?

लोभ परायण मनुष्य अपने भाई, पिता, मित्र, सुहद, बन्धु-बान्धव, पूजनीय गुरु तथा ब्राह्मण से भी सदा द्वेष कराता है।

* माया का बल ज्ञानियों को भी मोह में डाल देता है, तब दूसरे प्राणियों के मोहित हो जाने की क्या बात?

* जीवित (अवस्था में) पिता की आज्ञा का पालन करने, मृत्यु तिथि पर पर्याप्त भोजन कराने तथा गया में पिण्डदान करने– इन तीनों से ही पुत्र का पुत्रत्व सार्थक होता है।

* वैर करने वाले को सुख नहीं प्राप्त होता, यह निश्चित सिद्धान्त है।

* विश्वासघात करने वाले निश्चय ही नरक में जाते है। विश्वासघाती निश्चित रूप से दुःख प्राप्त करता है। ब्राह्मण की हत्या करने वालों और मद्यपान करने वालों के लिये तो प्रायश्चित है, परन्तु विश्वासघातियों और मित्र द्रोहियों के लिये कोई प्रायश्चित नहीं है।

* वैरी, मूर्ख, जड़, कामी, कलंकित और निर्लज्ज से बुद्धिमान् को मित्रता नहीं करनी चाहिये।

* जिसके साथ शत्रुता हो चुकी हो, उसका विश्वास कभी नहीं करना चाहिये।

* पाप करने का परामर्श देने वाला, पाप करने के लिये बुद्धि देने वाला, पाप की प्रेरणा देने वाला तथा पाप करने वालो का पक्ष लेने वाला भी निश्पक्ष ही पाप कर्त्ता के समान पाप भाजन होता है।

* इस संसार में अच्छे समय में सभी लोग अपने बन जाते हैं, किन्तु दैव के प्रतिकूल होने पर कोई भी सहायक नहीं होता। पिता, माता, पत्नी, सहोदर भाई, सेवक, मित्र एवं औरस पुत्र- कोई भी दैव के प्रतिकूल हो जाने पर सहायता नहीं करता। पाप या पुण्य करने वाला ही उसका भागी होता हे।

* संसार में जिसकी कीर्त्ति नष्ट हो गयी, उसके कलुषित जीवन को धिक्कार है।

* जो अधम मनुष्य शरण में आये हुए तथा दुःखी प्राणी को दूसरों को सौंप देता है वह प्रलयपर्यन्त नरक में वास करता है।

* दुःख देने वाले सुहृदों की अपेक्षा सुख देने वाला शत्रु श्रेष्ठ है।

* माया का बल ज्ञानियों को भी मोह में डाल देता है, तब दूसरे प्राणियों के मोहित हो जाने की क्या बात?

* जब माया के बल से मुनिगण भी मोह में पड़ जाते हैं और वे [illegible] होकर निन्दनीय कार्य करने लग जाते हैं।

* काम देव (वासना) तपस्वियों का शत्रु है, काम से ही तय का नाश होता है।

* पुण्य और पाप का अत्यन्त उग्र फल शीघ्र ही प्राप्त होता है, इसलिये ऐश्वर्य की इच्छा रखने वालो को विचार पूर्वक कार्य करना चाहिये। दूसरों को कष्ट पहुँचाने का कृत्य कभी नहीं करना चाहिये। दूसरे को कष्ट देने में संलग्न प्राणी कभी सुख नहीं पाता।

* तप से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, तप से उत्तम राज्य की प्राप्ति होती है। तप से बल की वृद्धि होती है और संग्राम में विजय की प्राप्ति होती है।

* स्वार्थ परायण प्राणी पाप से भयभीत नहीं होता।

* पाप से सम्पत्ति का क्षय होता है और पुण्य से महान् वृद्धि होती है।

* आहार की शुद्धि से ही अन्तःकरण की शुद्धि होती है। चित्त शुद्ध देने पर ही धर्म का प्रकाश होता है।

* तप मनुष्यों की सारी अभिलाषाएँ पूर्ण भर देता है और उनके

अन्तःकरण को पवित्र बना देता है।

* मनुष्यों को भाग्य तथा पुरुषार्थ- इन दोनों का आदर करना चाहिये, क्योंकि बिना उद्योग किये कार्य सिद्धि कैसे हो सकती है।

* तत्वदर्शी मनुष्यों को न्यायपूर्वक उद्योग करना चाहिये। वैसा करने में सिद्धि अवश्य मिलती है, अन्यथा नहीं।

* दया के समान कोई पुण्य नहीं है और हिंसा के समान कोई पाप नहीं।

* सब प्रकार से अपना कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को अपने शरीर की रक्षा के लिये दूसरे के शरीर को विनष्ट नहीं करना चाहिए।

* जो सभी प्राणियों के प्रति दयाभाव रखता है, जो कुछ भी प्राप्त हो जाय, उसी से संतोष करता और अपनी इन्द्रियों को वश में रखता है उसके ऊपर जगत्पति भगवान् शीघ्र प्रसन्न हो जाते है।

* जो व्यक्ति सदा अपनी कामना की पूर्त्ति के लिये बिना वैर भाव के ही किसी प्राणी का वध करता है, दूसरी योनि में जन्म लेकर वही जीव अपने संहर्ता का वध करता है।

* स्वार्थ परायण व्यक्ति को अपने दोष का ज्ञान नहीं रहता।

* अन्न प्रदान करने वाला, भय से बचाने वाला, विद्या का दान

करने वाला, धन प्रदान करने वाला और जन्म देने वाला ये

पाँच पिता कहे गये है।

* जिस व्यक्ति का वचन मिथ्या हो जाय, उसके अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, दान आदि सभी कृत्य निष्फल हो जाते है।

* जिस प्रकार धर्मशास्त्रों में पुण्यात्माओं के उद्धार के लिये सत्य पालन को विशेष कारण बताया गया है, उसी प्रकार दुराचारियों के पतन के लिये मिथ्या को परम हेतु कहा गया है।

* ऋण धारण करने वालों का दुःख दिन प्रतिदिन बढ़ता ही रहता है।

* काल के प्रभाव से सम और विषम परिस्थितियाँ आया ही करती हैं। काल ही मनुष्य को सम्मान तथा अपमान प्रदान करता है। यह काल ही मनुष्य को दाता तथा याचक बना देता है।

* उत्तम पुरुष के साथ उत्तम का, मध्यम के मध्यम का और अधम के साथ अधम का धर्म स्थित रहता है।

* सायंकाल के समय रोना निन्दनीय तथा दरिद्रता प्रदान करने वाला होता है।

* अज्ञान के नाश के लिये मनुष्य को निश्चित रूप से प्रयत्न करना चाहिये। अज्ञान का नष्ट हो जाना ही जीवन की सफलता है। अज्ञान के नष्ट हो जाने पर पुरुषार्थ की समाप्ति तथा जीवन

मुक्त दशा की उपलब्धि हो जाती है। विद्या ही अज्ञान का नाश करने में पूर्ण समर्थ है।

* समस्त वैदिक कर्म जो चित्त की शुद्धि के लिये होते हैं, उन्हें प्रयत्न पूर्वक करना चाहिये।
* ज्ञानी मनुष्य को चाहिये कि वह सन्यासी होकर श्रोत्रिय एवं ब्रह्म निष्ठ गुरु का आश्रय ग्रहण करे और पुनः सावधान होकर निष्कपट भक्ति के साथ प्रतिदिन वेदान्त का श्रवण करे।
* जो मनुष्य सदा अज्ञानी, असंयत चित्त और अपवित्र रहता है, वह उस परमपद को नहीं प्राप्त कर पाता और बार-बार संसार में जन्म लेता रहता है। किन्तु जो सदा ज्ञानशील संयतचित्त और पवित्र रहता है, वह तो उस परम पद को प्राप्त कर लेता है, जहाँ से लौट कर पुनः जन्म धारण नहीं करना पड़ता।
* गुरु के उपदेश से ही यह योग जाना जा सकता हे, इसके विपरीत करोड़ों शास्त्रों के द्वारा भी यह प्राप्त नहीं किया जा सकता।
* जो अक्षर ब्रह्म है- वही सबका प्राण है, वही प्राणी है, वही सबका मन है, वही परम सत्य तथा अमृत स्वरूप है।
* संसार समुद्र से पार होने के लिये 'ओम्' इस प्रणवमन्त्र के जप से परमात्मा का ध्यान करो।

* उस कार्य कारण रूप परमात्मा को देख लेने पर इस जीव के

हृदय की ग्रन्थि का भेदन हो जाता है अर्थात् अनित्य पदार्थों में स्वरूपाध्यास समाप्त हो जाता है, सभी सन्देह दूर हो जाते है और सभी कर्म क्षीण हो जाते हैं।

* वह निष्फल (व्यापक) ब्रह्म स्वर्णमय पर कोश (आनन्दमय कोश)- में विराजमान है। वह शुभ्र तथा परम प्रकाशित वस्तुओं का भी प्रकाशक है। उसे आत्मज्ञानी पुरुष ही ज्ञान पाते है।

* यह अमृतस्वरूप ब्रह्म ही आगे है, यह ब्रह्म ही पीछे है और यह ब्रह्म ही दाहिनी तथा बायीं ओर स्थित है। यह ब्रह्म ही ऊपर तथा नीचे फैला हुआ है। यह समग्र जगत् सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है।

* ब्रह्म को प्राप्त पुरुष नित्य प्रसन्न चित्त रहता है, वह न शोक करता है और न किसी प्रकार की आकांक्षा रखता है।

* जिसका चित्त चित्स्वरूप ब्रह्म में लीन हो गया, उसका कुल पवित्र हो गया, उसकी जननी कृतकृत्य हो गयी और पृथ्वी उसे धारण करके पुण्यवती हो गयी।

* जिसके द्वारा इस ब्रह्म विद्य का उपदेश दिया जाता है, वह साक्षात् परमेश्वर ही है। उपदिष्ट विद्या का प्रत्युपकार करने मं

मनुष्य सर्वथा असमर्थ है, इसलिये वह गुरु का सदा ऋणी रहता है। ब्रह्म जन्म प्रदान करने वाला (ब्रह्म तत्त्व का साक्षात्कार कराने वाला) गुरु माता-पिता से भी श्रेष्ठ कहा गया है, क्योंकि माता-पिता से प्राप्त ब्रह्म जन्म कभी नष्ट नहीं होता।

* ब्रह्म ज्ञान दाता गुरु सबसे श्रेष्ठ होता है। पूर्ण प्रयत्न से गुरु को संतुष्ट रखना चाहिये। तन-मन वचन से सर्वदा गुरु परायण रहना चाहिये, अन्यथा कृतघ्न होना पड़ता है और कृतघ्न हो जाने पर उद्धार नहीं होता।

* भक्ति की जो पराकाष्ठा है, उसी को ज्ञान कहा गया है और वही वैराग्य की सीमा भी है, क्योंकि ज्ञान प्राप्त हो जाने पर भक्ति और वैराग्य ये दोंनों ही स्वयं सिद्ध हो जाते हैं।

* जो मनुष्य ब्रह्म को जान लेता है, वह स्वयं ब्रह्म का ही रूप होकर उसी ब्रह्म को ही प्राप्त हो जाता है।

* यदि मनुष्य वैराग्य युक्त होकर पूर्ण ज्ञान के बिना मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो एक कल्प तक निरन्तर ब्रह्म लोक में निवास करता है। उसके बाद पवित्र श्रीमान् पुरुषों के घर में उसका जन्म होता है। वहाँ पर वह साधना करता है और फिर उसमें ज्ञान का उदय होता है।

* यह मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है, उसमें भी ब्राह्मण वर्ण में और उसमें भी वेद ज्ञान की प्राप्ति होना महान् दुर्लभ है।

* मनुष्य को यथाशक्ति ज्ञान प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये। उससे मनुष्य एक-एक पद पर अश्वमेध यज्ञ का फल निश्चित रूप से प्राप्त करता है।

* दूध में छिपे हुए घृत की भाँति प्रत्येक प्राणी में विज्ञान रहता है। उसे मन रूपी मथानी से निरन्तर मथते रहना चाहिये और इस प्रकार उस विज्ञान को प्राप्त करके कृतार्थ हो जाना चाहिये ऐसा वेदान्त का डिंडिमघोष है।

* धर्म से भक्ति उत्पन्न होती है और भक्ति से परब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होता है।

* मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले को धर्म की प्राप्ति के लिये सदा वेद का आश्रय ग्रहण करना चाहिये।

* जो लोग वेद प्रतिपादित धर्म का परित्याग करके अन्य धर्म का आश्रय लेते हैं, राजा को चाहिये कि वह ऐसे अधर्मियों को अपने राज्य से निष्कासित कर दे। ब्राह्मण उन अधार्मिकों से सम्भाषण न करें और द्विजगण उन्हें अपनी पंक्ति में न बैठाये।

* वैदिक पुरुष को पूरे प्रयत्न के साथ वेद का ही आश्रय ग्रहण

करना चाहिये, क्योंकि वेद-प्रतिपादित धर्म से युक्त ज्ञान ही परब्रह्म को प्रकाशित कर सकता है।

* ऐश्वर्य तो सभी कष्टों को मूल कारण है और परमात्मा की स्मृति को मिटाने वाला हैं।
* अत्यधिक उन्नति होती है, उसका अधोपतन भी अवश्यम्भावी है।
* विपत्ति सभी प्राणियों की सम्पदाओं का हेतू स्वरूप है। बिना विपत्ति के भला किन लोगों को गौरव प्राप्त हो सकता है।
* फल की प्राप्ति हो जाने के बाद मनुष्यों का दुःख उत्तम सुख में परिणत हो जाता है।
* जो मनुष्य उन परमेश्वर के नामों तथा गुणों का सतत कीर्तन करता है, वह यथा समय जन्म, मृत्यु, रोग, भय तथा बुढ़ापे पर विजय प्राप्त कर लेता है।
* संध्या न करने वाला व्यक्ति अपवित्र रहता है और वह समस्त कर्मों के लिये अयोग्य हो जाता है। वह दिन में जो भी सत्कर्म करता है, उसके फल का अधिकारी नहीं रह जाता है।
* जो प्रातः एवं सायंकाल की संध्या नहीं करता, वह शुद्र के समान है और समस्त ब्राह्मणोचित कर्मों से बहिष्कृत कर देने योग्य है।

* जो द्विज संध्या करने के कारण पवित्र हो चुका है, वह तेज

से सम्पन्न तथा जीव मुक्त ही है। उसके स्पर्श मात्र से सभी तीर्थ पवित्र हो जाते हैं और उसके पास से पाप उसी प्रकार भाग जाते है, जैसे गरुड को देखते ही सर्प।

* वेद में जो भी प्रतिपादित है, वह धर्म है, और वही कर्म परम मंगलकारी कर्म है। इसके विपरीत जो कर्म अवैदिक होता है, वह निश्चित रूप से अशुभ होता है।

* जो मनुष्य ब्रह्म की भक्ति करता है, वही मुक्त है और वह जन्म- मृत्यु, जना व्याधि, शोक तथा भय इन सबसे रहित हो जाता है।

* जो मनुष्य निरन्तर भगवान् (ओ३म्) नाम का जप करता है, वह दीर्घ जीवी होता है और मृत्यु उससे दूर रहती है।

* जिनके स्पर्श मात्र से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते है; वे (भक्त) सौभाग्यशाली है। वे हजारों कुलों को पवित्र कर देते हैं। जलती हुई अग्नि में पड़े सखे पत्तों की भाँति उनके पाप जल जाते है। उन भक्तों को देखकर मोह भी भयभीत होकर मोहित हो जाता है, काम निर्मूल हो जाता है, लोभ तथा क्रोध नष्ट हो जाते है और मृत्यु विलीन हो जाती है, इसी प्रकार रोग, जरा,

शोक, भय, काल, शुभाशुभ कर्म, हर्ष तथा भोग- ये सब प्रभाव

हीन हो जाते है।

* पिता की अपेक्षा माता सौ गुनी श्रेष्ठ है, यह निश्चित है, किन्तु ज्ञान प्रदान करने वाला गुरु माता से भी सौ गुना अधिक श्रेष्ठ होता है।

* भगवान् की भक्ति न करने वाला मनुष्य स्वयं अपनी भी रक्षा करने में असमर्थ रहता है।

* ऐश्वर्य समस्त विपत्तियों का बीज स्वरूप है, ज्ञान का आच्छादन कर देने वाला है, मुक्ति मार्ग का कुठार है तथा भक्ति में व्यवधान उत्पन्न करने वाला है।

* यह ऐश्वर्य जन्म, मृत्यु, जना, शोक और रोग के बीज का महान् अंकुर है। सम्पत्ति के घोर अंधकार से अंधा बना हुआ मानव मुक्ति का मार्ग नहीं देख पाता है।

* जो मूर्ख सम्पत्ति से उन्मल है, उसको वास्तव में मदिरापान से भी प्रमत्त समझना चाहिये। बंधु-बान्धव उसे बंधु समझकर सदा घेरे रहते है।

* विषयान्ध भी राजस तथा तामस भेद से दो प्रकार का जताया गया है। शास्त्र ज्ञान से हीन व्यक्ति को तामस तथा शास्त्रज्ञ को

राजस कहा गया है।

* शास्त्र भी दो प्रकार के मार्ग दिखलाता है। एक संसृति का हेतु है तथा दूसरा निवृत्ति का कारण कहा गया है।

* प्रसन्नतापूर्वक अनेक जन्मों तक अपने किये कर्म के परिणाम स्वरूप नाना प्रकार की योनियों में क्रमशः भ्रमण करने के पश्चात् भगवान् की कृपा से ही सैकड़ों तथा हजारों प्राणियों में से कोई विरला ही संसार सागर से पार करने वाले सत्संग को प्राप्त कर पाता है।

* जब कोई साधु तत्त्वज्ञानरूपी दीपक से उसे मुक्ति मार्ग दिखा देता है, तब संसार बन्धन को तोड़ने के लिये जीव प्रयत्न करने लगता है। अनेक जन्मों में किये गये तप तथा उपवास से जब मानव का पुण्योदय होता है, तब वह निर्विघ्न तथा परम सुखप्रद मुक्तिमार्ग को प्राप्त कर पाता है।

* नीतिज्ञ पुरुष विपत्ति काल में कभी भी घबराता नहीं, क्योंकि सम्पत्ति अथवा विपत्ति नश्वर है। ये दोनों श्रम साध्य है।

* सम्पत्ति अथवा विपत्ति अपने पूर्व जन्म में किये गये कर्म का फल है और उन्हीं के अधीन होकर कर्त्ता को स्वयं फल भोगना पड़ता है। सम्पूर्ण प्राणियों के लिये प्रत्येक जन्म में यही स्थिति

है, जो चक्रमण्डल की भाँति निरन्तर आती-जाती रहती है।

* अपने द्वारा किये गये कर्म का फल भोगना ही पड़ता है। शुभ अथवा अशुभ जो कुछ भी कर्म मनुष्य करता है, वह उसे भोगता ही है। सैकड़ों करोड़ों कल्प बीत जाने के बाद भी बिना भोगे हुए कर्मों का क्षय नहीं होता।

* किये हुए सम्पूर्ण कर्मों का भोग शेष रह जाने पर उन प्राणियों का कर्मानुसार जन्म होता है।

* प्राणी कर्म से ही ब्रह्मशाप, कर्म से ही शुभाशीर्वाद, कर्म से ही महालक्ष्मी और कर्म से ही दरिद्रता प्राप्त करता है। करोड़ों जन्मों के संचित कर्म प्राणी के पीछे उसकी छाया की भाँति लगे रहते हैं और बिना भोगे उस प्राणी को नहीं छोड़ते।

* वह परमात्मा त्रिलोकी में विधाता के भी विधाता, पालन करने वाले के भी पालक, सृष्टि करने वाले के भी स्रष्टा, संहार करने वाले के भी पालक सृष्टि करने वाले के भी स्रष्टा संहार करने वाले के भी संहारक और काल के भी काल है।

* जो मनुष्य इस संसार में घोर विपत्ति के समय में भगवान् का स्मरण करता है, उसके लिये उस विपत्ति में भी सम्पत्ति उत्पन्न हो जाती है।

* सभी की अन्तरात्मा भगवान् सभी प्राणियों के शरीर में विराजमान रहते हैं। वे भगवान् जिसके शरीर से निकल जाते हैं, वह प्राणी उसी क्षण शव हो जाता है।

* प्रारब्ध सबसे अधिक बलशाली होता है। भाग्यहीन तथा मूर्ख व्यक्ति की रक्षा करने में कौन समर्थ है।

* जो ब्राह्मण प्रतिदिन त्रिकाल संध्या, श्राद्ध, तर्पण, बलिवैश्व देव और वेदध्वनि नहीं करता, वह विषहीन सर्प के समान है।

* जो मनुष्य प्रातः तथा सायंकाल की संध्या नहीं करता, वह सब प्रकार से सदा अपवित्र होकर ब्रह्म हत्या के पाप का भागी होता है।

* सुख, दुःख, भय, शोक, हर्ष, मंगल, सम्पत्ति और विपत्ति- यह सब कर्मानुसार होता है। अपने कर्म से मनुष्य अनेक पुत्रों वाला होता है, कर्म से ही वह वंशहीन होता है, कर्म से ही उसे मरा हुआ पुत्र होता है और कर्म से ही वह पुत्र दीर्घजीवी होता है। मनुष्य कर्म से ही गुणी, कर्म से ही अंगहीन, कर्म से ही अनेक पत्नियों वाला तथा कर्म से ही भार्याहीन होता है। कर्म से ही मनुष्य रूपवान् तथा कर्म से ही निरन्तर रोगग्रस्त रहता है, कर्म से ही व्याधि तथा कर्म से ही नीरोगता होती है।

कर्म सबसे बलवान् है।

* जो विरागी पुरुष पुत्र उत्पन्न किये बिना ही अपनी प्रिय भार्या का त्याग करता है, उसका पुण्य चलनी से बहकर निकल जाने वाले जल की भाँति नष्ट हो जाता है।

* भगवान् की भक्ति प्रदान करने वाला ही सच्चा बन्धु होता है, न कि अभीष्ट सुख देने वाला। भगवत्प्राप्ति का मार्ग दिखाने वाला बन्धु ही सच्चा पिता है। जो आवागमन से मुक्त कर देने वाली है, वही सच्ची माता होती है। वही धन दया स्वरूपिणी है, जो यम के त्रास से छुटकारा दिला दे।

* वेद अथवा यज्ञ से जो भी सारतत्व निकलता है, वह भगवान् की सेवा ही है।

* ज्ञान दाता स्वामी वही है, जो ज्ञान के द्वारा बन्धन से मुक्त कर देता है और जो बंधन में डालता है, वह शत्रु है।

* जो गुरु भगवान् में भक्ति उत्पन्न करने वाला ज्ञान नहीं देता, वह शिष्यघाती तथा शत्रु है, क्योंकि वह बन्धन से मुक्त नहीं करता।

* प्रायः कुमार्ग पर चलने वाला पराक्रमी व्यक्ति क्या नहीं कर सकता है।

* वेद ही पूर्ण रूप से धर्म-मार्ग के प्रमाण हैं। उस वेद राशि से विरोध न रखने वाला जो कुछ भी है, वही प्रमाण है, दूसरा नहीं।

* वेद-प्रतिपादित धर्म को छोड़कर जो अन्य को प्रमाण मानकर व्यवहार करता है, उसे दण्डित करने के लिये यमलोक में नरकदण्ड स्थित है। अतएव सभी प्रयत्नों से वेदाक्त धर्म का ही आश्रय लेना चाहिये।

* जो लोग इस लोक में मनुष्यों को निन्दित शास्त्रों का उपदेश करते है, वे मुख नीचे तथा पैर ऊपर किये हुए नरक सागर जायँगे।

* मनुष्य को सदा वेदोक्त सद्धर्म का ही पालन करना चाहिये। उसे सावधान होकर बार-बार विचार करना चाहिये कि आज मैंने कौन-कौन सा कार्य किया, क्या दिया, क्या दिलाया अथवा वाणी से कैसा सम्भाषण किया? यह भी सोचना चाहिये कि अत्यन्त दारुण सभी पातकों तथा उपपातकों में कहीं मेरी प्रभृत्ति तो नहीं हो गयी।

* गायत्री से बढ़कर इस लोक तथा परलोक में दूसरा कुछ भी नहीं है। चूँकि यह उच्चारण करने वाले की रक्षा करती है, अतः इसे गायत्री नाम से अभिहित किया जाता है।

* कोई ब्राह्मण रुद्राक्ष धारण करके भक्ति पूर्वक जो कुछ भी वैदिक कर्म करता है, उसे उसका महान फल प्राप्त होता है।

* श्रुती सम्पन्न ब्राह्मण को सदा अपने धर्म का पालन करना चाहिये। उसे वैदिक मन्त्र तथा जप करना चाहिये। लौकिक मन्त्र का जप कभी नहीं करना चाहिये।

* प्रातःकाल की संध्या आकाश में तारों के रहते-रहते, मध्याह्न की संध्या सूर्य के मध्य-आकाश में आने पर और सायंकाल की संध्या सूर्य के पश्चिम दिशा में रहने पर करने का विधान है। इस प्रकार इन तीनों संध्याओं को करना चाहिये।

* तारों के आकाश में विद्यमान रहने की जाने वाली प्रातः संध्या उत्तम, तारों के लुप्त होने से लेकर सूर्योदय के बीच की अवधि में की जाने वाली संध्या मध्यम और सूर्य के उदय हो जाने पर की जाने वाली संध्या अधर्म।

* विप्र वृक्ष है, ये संध्याएँ ही उसकी जड़े हैं, वेद उसकी शाखाएँ है और सभी धर्म, कर्म उसके पत्ते है। अतएव प्रयत्न के साथ मूल अर्थात् संध्या की ही रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि मूल के कट जाने पर न तो वृक्ष रहता है और न शाखा।

* समय बीत जाने पर संध्या की जाय तो आरम्भ में एक सौ

आठ बार गायत्री का जप करके संध्या करनी चाहिये।

* घर में की गयी संध्या साधारण कही गयी है, गोशाला में गयी संध्या मध्यम कोटि की होतीं हे, नदी के तट पर की गयी संध्या उत्तम होती है।

* मनुष्य दिन में जो पाप करता है, वह पाप सायंकालीन संध्या उपासना से नष्ट हो जाता है और जो पाप रात में करता है, वह प्रातःकालीन संध्या उपासना से मिठ जाता है।

* जगत् में जितनी आसक्तियाँ है, उन्हें सत्संग नष्ट कर देता है।

* जैसे तागों के ताने बाने में वस्त्र ओत-प्रोत रहता है, वैसे ही यह सारा विश्व परमात्मा में ही ओत-प्रोत है।

* जैसे सूत के बिना वस्त्र का अस्तित्व नहीं है, किन्तु सूत्र वस्त्र के बिना भी रह जाता है, वैसे ही इस जगत् के न रहने पर भी परमात्मा रहता है, किन्तु यह जगत् परमात्मस्वरूप ही है- परमात्मा के बिना इसका कोई अस्तित्व नहीं है।

* जो गृहस्थ शब्द-रूप-रस आदि विषयों में फंसे हुए है, वे कामना से भरे हुए होने के कारण गीध के समान है।

* निरन्तर सात्त्विक वस्तुओं का सेवन करने से ही सत्त्वगुण की वृद्धि होती है।

* जिस धर्म के पालन से सत्त्वगुण की वृद्धि हो वही सबसे श्रेष्ठ

है। वह धर्म रजोगुण और तमोगुण को नष्ट कर देता है। जब वे दोनों नष्ट हो जाते है, तब उन्हीं के कारण होने वाला अधर्म भी शीघ्र ही मिट जाता है।

* वैराग्य ही इस संसार सागर से पार होने के लिये नौका के समान है।

* जो लोग प्रतिदिन तीनों समय वेद विधि से भगवान् की उपासना करते हैं, उनके सारे पाप और दुःखों के बीजों को भगवान् भस्म कर देते हैं।

* सत्त्वगुण की प्रधानता के समय मनुष्य ज्ञान और तपस्या से अधिक प्रेम करने लगता है।

* यह ज्ञानमृत आनन्द महासागर का सार है। जो श्रद्धा के साथ इसका सेवन करता है, वह तो मुक्त हो ही जाता है, उसके संग से सारा जगत् मुक्त हो जाता है।

* यह मनुष्य शरीर मोक्ष और स्वर्ग का द्वार है।

* जीव मात्र के लिये सबसे बड़े लाभ की बात यही है कि संत पुरुषों का समागम प्राप्त हो।

* जो लोग विषयों के साथ इन्द्रियों का संयोग नहीं होने देते,

उनका मन अपने आप निश्चल होकर शांत हो जाता है।

* संसार का धर्म है जन्म, मृत्यु, भूख प्यास, श्रम-कष्ट, भय और तृष्णा। ये क्रमशः शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धि को प्राप्त होते ही रहते है। जो पुरुष भगवान् की स्मृति में इतना तन्मय रहता है कि इनके बार-बार होते-जाते रहने पर भी उनसे मोहित नहीं होता, पराभूत नहीं होता, वह उत्तम भागवत् है।

* जिनका इस शरीर में न तो सत्कुल में जन्म तपस्या आदि कर्म से तथा न वर्ण, आश्रम एवं जाति से ही अहं भाव होता है, वह निश्चय ही भगवान् का प्यारा है।

* जो धन सम्पत्ति अथवा शरीर आदि में यह अपना है और यह पराया इस प्रकार का भेद-भाव नहीं रखता, समस्त पदार्थों में समस्वरूप परमात्मा को देखता रहता है, समभाव रखता है तथा किसी भी घटना अथवा संकल्प से विक्षिप्त न होकर शान्त रहता है, वह उत्तम भक्त हैं।

* ईश्वर से विमुख पुरुष को उनकी माया से अपने स्वरूप की विस्मृति हो जाती है और इस विस्मृति से ही मैं देवता हूँ मैं मनुष्य हूँ, इस प्रकार का भ्रम-विपर्यय हो जाता है। इस देह

आदि अन्य वस्तु में अभिनिवेश, तन्मयता होने के कारण ही

बुढ़ापा, मृत्यु रोग आदि भय होते है। इसलिये अपने गुरु को ही आराध्य देव परम प्रियतम मानकर अन्यय भक्ति के द्वारा उस ईश्वर का भजन करना चाहिए।

* यह भागवत् धर्म एक ऐसी वस्तु है, जिसे कानों से सुनने, वाणी से उच्चारण करने, चित्त से स्मरण करने, हृदय से स्वीकार करने या कोई इसका पालन करने जा रहा हो तो उसका अनुमोदन करने से ही मनुष्य उसी क्षण पवित्र हो जाता है चाहे वह भगवान् का एवं सारे संसार का प्रो ही क्यों न हो।

* संसार में माता-पिता का आगमन पुत्रों के लिये और भगवान् की ओर अग्रसर होने वाले साधु-संतों की पदार्पण प्रपंच में उलझे हुए दीन-दुःखियों के लिये बड़ा ही सुखकर और बड़ा ही मंगलमय होता है।

* जिसे किसी की अपेक्षा नहीं, जो जगत् के चिन्तन से सर्वथा उपरत होकर मेरे ही मनन-चिन्तन में तल्लीन रहता है और राग-द्वेष न रखकर सबके प्रति समान दृष्टि रखता है, उस महात्मा के पीछे मैं निरन्तर यह सोचकर घूमा करता हूँ कि उसके चरणों की धूल उड़कर मेरे ऊपर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ।

* ब्राह्मण स्वभाव से ही परोपकारी, शान्तचित्त एवं अनासक्त होते

है। वे किसी के साथ वैरभाव नहीं रखते और समदर्शी होने

पर भी प्राणियों को कष्ट देखकर उसके निवारण के लिये पूरे हृदय से जुट जाते हैं।

* जो वाणी और वचन भगवान् के गुणों से परिपूर्ण रहते हैं, वे ही परम पावन है, वे ही मंगलमय है, और वे ही परमसत्य है।

* ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के पाठ से ब्राह्मण को मधुकुल्या, घृतकुल्या और पयः कुल्या (मधु, घी एवं दूध) की नदियाँ अर्थात् सब प्रकार की सुख-समृद्धि की प्राप्ति होती है।

* जो अपने कल्याण का इच्छुक है, उसे सभी कठिनाईयों से अपनी विवेक-बुद्धि द्वारा ही किसी बाह्य साधन से नहीं अपने को बचा लेना चाहिये। वस्तुतः आत्म दृष्टि ही समस्त विपत्तियों से बचने का एकमात्र साधन है।

* कमलनाल में पतला-सा सूत होता है, वैसे ही वह वेदवाणी प्राणियों के अन्तःकरण में अनाहतनाद के रूप में प्रकट होती है।

* वह निर्मल ज्ञान भी, जो मोक्ष की प्राप्ति का साक्षात् साधन है, यदि भगवान् की भक्ति से रहित हो तो उसकी उतनी शोभा नहीं होती। फिर जो कर्म भगवान को अर्पण नहीं किया गया

है। वह चाहे कितना ऊँचा क्यों न हो सर्वदा अमंगलरूप, दुःख देने वला ही है, वह तो शोभन-वरणीय हो ही कैसे सकता है।

* ऐसा समझो कि जिसमें भी तेज, श्री, कीर्त्ति, ऐश्वर्य, लज्जा, त्याग, सौन्दर्य, सौभाग्य, पराक्रम, तितिक्षा और विज्ञान आदि श्रेष्ठ गुण हो, वह मेरा (ईश्वर) ही अंश है।

* जैसे धधकती हुई आग लकड़ियों के बड़े ढेर को भी जलाकर खाक कर देती है, वैसे ही ईश्वर की भक्ति भी समस्त पाप-राशि को पूर्णतया जला डालती है।

* जो लोग सैकड़ों पुण्यों के फलस्वरूप इस सुन्दर मनुष्य शरीर को पाकर भी व्यर्थ विषयों सुखों में रमण करते हैं, मोक्ष पथ का अनुसरण नहीं करते, वे मानो राख के लिये जल्दी-जल्दी चंदन की लड़की को फूँक रहे हैं।

* जो भगवान् से विमुख है, उसे कभी सिद्धि (मुक्ति) नहीं प्राप्त हो सकती, विष अमृत हो जाय, ऐसा कभी सम्भव नहीं है, लोहा सैकड़ों वर्षों तक आग में तपाया जाय, तो भी कभी सोना नहीं हो सकता, चन्द्रमा की कलकंकित काँति कभी निष्कलङ्क नहीं हो सकती, वह कभी सूर्य के समान प्रकाशमान नहीं हो सकता। परन्तु जो अनन्य चित्त होकर भगवान् के चिन्तन में लगा है, वह मनुष्य अपने शरीर से अत्यन्त मलिन होने पर

भी बड़ी शोभा पाता है।

* जो मनुष्य भोग और ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त और तत्त्वज्ञान से विमुख है। यह संसार रूपी महान् षङ्क में उस तरहं डूब जाता है, जैसे कीचड़ में फँसी हुई बूढ़ी गाय।

* संसार के लोग श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा आचरित धर्म का ही अनुसरण करते हैं। इसलिये श्रेष्ठ पुरुष को चाहिये कि वह उत्तम धर्म का ही आचरण करे और निन्दित कर्म को यत्नपूर्वक त्याग दे।

* जिस पुरुष गेह स्त्री, पुत्र और क्षेत्र आदि दुःखद भोगों को वैराग्य और ज्ञान पूर्वक त्याग दिया है, उसके समान बड़भागी इस संसार में कोई नहीं है।

* मुनियों का दर्शन धर्म का उपदेश करने वाला होता है।

* यह शोक बुद्धि को नष्ट और शास्त्र ज्ञान को चौपट कर देता है, विचार शक्ति को भी क्षीण कर डालता है।

* एक भारतवर्ष ही चारों वर्णों से युक्त कर्म क्षेत्र है।

* जो यज्ञ पुरुष भगवान् वेदों के द्वारा जानने योग्य है तथा जो जनार्दन इस समस्त जगत् के अन्तरात्मा है, वे प्रसन्न हो तो क्या नहीं दे सकते।

* खड़े होते, चलते, सोते-जगाते, लेटते और बैठते हुए प्रतिक्षण

भगवान् का स्मरण करना चाहिए।

* जिस पुरुष को जिसकी संगति मिल जाती है, आगे उसी के गुण आने लगते हैं- ठीक उसी तरह, जैसे मणि कीचड़ में पड़ी हो तो उनमें उसके दुर्गन्ध आदि दोष आ जाते है।

* जो बिना कष्ट के ही प्राप्त होने योग्य इस महान् सुख (परमेश्वर) को त्याग कर अन्य तुच्छ सुखों की इच्छा करता है, वह दीनहृदय मूर्ख पुरुष मानो हाथ में आये हुए अपने राज्य को त्यागकर भीख माँगता है।

* ज्ञानी गुरु के वचन, क्लेशो का उन्मूलन करके शिष्य को भवसागर से पार पहुँचा देते है।

* भगवद्भक्त पुरुष यदि जाति का चण्डाल हो तो भी वह स्मरणमात्र से, वर्त्तालाप से अथवा सम्मानित होकर अथवा स्वेच्छा से ही लोगों को पवित्र कर देता है।

* परम पवित्र अ, उ, म् इन तीन मात्राओं से युक्त प्रणव का मन ही मन जप करे। प्राण वायु को वश में करके मन का दमन करे और एक क्षण के लिये भी प्रणव को न भूले। बुद्धि की सहायता से मन के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा ले

और कर्म की वासनाओं से चंचल हुए मन को विचार के द्वारा रोककर भगवान् के मंगलमय रूप में लगाये।

* मनुष्य जन्म का यही इतना ही लाभ है कि चाहे जैसे हो। ज्ञान से, भक्ति से अथवा अपने धर्म की निष्ठा से जीवन को ऐसा बना लिया जाय कि मृत्यु के समय भगवान् की स्मृति अवश्य बनी रही।

* संसार में मनुष्य के लिये सबसे बड़ी कल्याण प्राप्ति यही है, कि उसका चित्त तीव्र भक्तियोग के द्वारा भगवान् में लग कर स्थिर हो जाय।

* पुरुष और प्रकृति दोनों ही नित्य और एक-दूसरे के आश्रय से रहने वाले है। इसलिये प्रकृति और पुरुष को कभी छोड़ नहीं सकते।

* मैं आत्मारूप से सदा सभी जीवों में स्थित हूँ इसलिये जो लोग मुझ सर्वभूत स्थित परमात्मा का अनादर करके केवल प्रतिमा में ही मेरा पूजन करते हैं, उनकी वह पूजा स्वांग मात्र है।

* मैं सबका आत्मा, परमेश्वर सभी भूतों में स्थित हूँ। ऐसी दशा में जो मोह वश मेरी उपेक्षा करके केवल प्रतिमा के पूजन में ही लगा रहता है, वह तो मानो भस्म में ही हवन करता है।

* जो दूसरे जीवों का अपमान करता है, वह बहुत सी घटिया बढिया सामाग्रियों से अनेक प्रकार के विधि-विधान के साथ मेरी मूर्ति का पूजन भी करे तो भी मैं उससे प्रसन्न नहीं हो सकता।

* विद्या, तप, धन, सुदृढ़ शरीर, युवावस्था और उच्च कुल ये छः सत्पुरुषों के तो गुण है, परन्तु नीच पुरुषों में ये ही अवगुण हो जाते है, क्योंकि इनसे उनका अभिमान बढ़ जाता है और दृष्टि दोष युक्त हो जाती है एवं विवेक शक्ति नष्ट हो जाती है। इसी कारण वे महापुरुषों का प्रभाव नहीं देख पाते।

* शत्रुओं के बाणों से विंध जाने पर भी ऐसी व्यथा नहीं होती, जैसी अपने कुटिल बुद्धि स्वजनों के कुटिल वचनों से होती है। क्योंकि बाणों से शरीर छिन्न-भिन्न हो जाने पर तो जैसे-तैसे निद्रा आ जाती है, किन्तु कुवाक्यों से मर्मस्थान बिद्ध हो जाने पर तो मनुष्य हृदय की पीड़ा से दिन-रात बेचैन रहता है।

* सम्मुख जाना, नम्रता दिखाना, प्रणाम करना आदि क्रियाएँ जो लोक व्यवहार में परस्पर की जाती है, तत्व ज्ञानियों के द्वारा बहुत अच्छे ढंग से की जाती है। वे अन्तर्यामी रूप से सबके अन्तःकरणों में स्थित परम पुरुष को नमस्कार किया करते हैं।

* धन और इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करना मनुष्य के सभी

पुरुषार्थों का नाश करने वाला है, क्योंकि इनकी चिन्ता से वह ज्ञान और विज्ञान से भ्रष्ट होकर वृक्षादि स्थावर योनियों में जन्म पाता है।

* जो पुरुष बड़ी कठिनता से भूलोक में मोक्ष का साधन स्वरूप मनुष्य शरीर पाकर भी विषयों में आसक्त रहता है वह निश्चय ही आत्मघाती है।

* वास्तव में कर्म तो वही है, जिससे श्री हरि को प्रसन्न किया जा सके और विद्या भी वही है, जिससे भगवान् में चित्त लगे।

* जो पुरुष इन्द्रियों के वशीभूत है, वह वन में विचरण करता रहे तो भी उसे जन्म-मरण का भय बना ही रहता है, क्योंकि बिना जीते हुए मन और इन्द्रिय रूपी उसके छः शत्रु कभी उसका पीछा नहीं छोड़ते। जो बुद्धिमान् पुरुष इन्द्रियों को जीतकर अपनी आत्मा में ही रमण करता है, उसका गृहस्थाश्रम भी क्या बिगाड़ सकता है।

* महापुरुष जैसा-जैसा आचरण करते है, दूसरे लोग उसी का अनुकरण करने लगते है।

* जिन्होंने इस लोक में अध्ययनादि के द्वारा वेदरूपा अति सुन्दर

और पुरातन मूर्ति को धारण कर रखा है तथा जो परम पवित्र सत्त्वगुण, शम, दम, सत्य, दया, तप, तितिक्षा और ज्ञानादि आठ गुणों से सम्पन्न है- उन ब्राह्मणों से बढ़कर और कौन हो सकता।

* जो पुरुष केवल सुपथ्य का ही सेवन करता है, उसे रोग अपने वश में नहीं कर सकते। जो पुरुष नियमों का पालन करता है, वह धीरे-धीरे पाप-वासनाओं से मुक्त हो कल्याण प्रद तत्त्व ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होता है।

* मनुष्य के लिये वे ही धर्म, अर्थ और काम शास्त्र विहित है, जिनसे उसके स्वजनों को सुख मिलता है किन्तु अपने स्वजनों को दुःख मिलता है, वे धर्म, अर्थ और काम हितकारी नहीं है।

* जो किसी के गुणों में दोष नहीं निकालते, झूठ नहीं बोलते, दम्भ, ईर्ष्या, और हिंसा नहीं करते तथा अभिमान से रहित है- उन सत्यशील ब्राह्मणों का आशीर्वाद कभी विफल नहीं होता।

* यह बात स्पष्ट है कि जो वेदवेत्ता और सदाचारी ब्राह्मण होते है, उनका आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं होता।

* जिन महात्माओं के चित्त में सबके लिये समता है, जो केवल

भगवान् के चरणारविन्दों का मकरन्द रस पीने के लिये सदा उत्सुक रहते है, उन्हें दुर्गुणों के खजाने अथवा दुराचारियों की जीविका चलाने वाले और धन के मद से मतवाले दुष्टों की क्या आवश्यकता है? वे तो उनकी उपेक्षा के ही पात्र है।

* साधु पुरुष समदर्शी होते है, फिर भी उनका समागम दरिद्र के लिये ही सुलभ हे, क्योंकि उसके भोग तो पहले से ही छूटे हुए है। अब संतों के संग से उसकी लालसा-तृष्णा भी मिट जाती है और शीघ्र ही उसका अतःकरण शुद्ध हो जाता है।

* जगत् के सभी जीव उसी माया से मोहित होकर शास्त्र और आचार्यों के बार-बार समझाने पर भी अपने आत्मा को निरन्तर भूले हुए है। वास्तव में उस माया की ऐसी ही शक्ति है। भला उससे मोहित होकर जीव यहाँ क्या-क्या नहीं भूल जाते हैं।

* वर्षा के सायंकाल में बादलों से घना अंधेरा छा जाने पर ग्रह और तारों का प्रकाश तो नहीं दिखलायी पड़ता परन्तु जुगनू चमकने लगते हैं- जैसे कलियुग में पाप की प्रबलता हो जाने से पाखण्ड मतों का प्रचार हो जाता है और वैदिक सम्प्रदाय लुप्त हो जाते हैं।

* मूसलाधार वर्षा की चोट खाते रहने पर भी पर्वतों को कोई

व्यथा नहीं होती थी- जैसे दुःखों की भरमार होने पर भी उन

पुरुषों को किसी प्रकार की व्यथा नहीं होती, जिन्होंने अपना चित्त भगवान् को ही समर्पित कर रखा है।

* तालाबों के तट, काँटे-कीचड़ और जल के बहाव के कारण प्रायः अशान्त ही रहते थे, परन्तु सारस एक क्षण के लिये भी उन्हें नहीं छोड़ते थे- जैसे अशुद्ध हृदय वाले विषयी पुरुष काम-धंधों की झंझट से कभी छुटकारा नहीं पाते, फिर भी घरों में ही पड़े रहते है।

* वर्षा ऋतु में इन्द्र की प्रेरणा से मूसलाधार वर्षा होती हे, इससे नदियों के बाँध और खेतों की मेंड़ें टूट-फूट जाती हैं- जैसे कलियुग में पाखण्डियों के तरह-तरह के मिथ्या मतवादों से वैदिक मार्ग की मर्यादा ढीली पड़ जाती है।

* शरद ऋतु में कमलों की उत्पत्ति से जलाशयों के जल ने अपनी सहज स्वच्छता प्राप्त कर ली- ठीक वैसे ही, जैसे योग भ्रष्ट पुरुषों का चित्त फिर से योग का सेवन करने से निर्मल हो जाता है।

* वेदों ने जिन कर्मों का विधान किया है, वे धर्म है और जिनका निषेध किया हे, वे अधर्म है। वेद स्वयं भगवान् के स्वरूप

है। वे उनके स्वभाविक श्वास प्रश्वास एवं स्वयं प्रकाश ज्ञान है।

* मनुष्यों में भी चार वर्ण श्रेष्ठ हे, उनमें भी ब्राह्मण श्रेष्ठ है, ब्राह्मणों में वेद को जानने वाला श्रेष्ठ है और वेदज्ञों में भी वेद का तात्पर्य जानने वाला श्रेष्ठ है।

* संसार में प्राणी तो बहुत हे, परन्तु उनके जीवन की सफलता इतने में ही है कि जहाँ तक हो सके, अपने धन से, विवेक-विचार से, वाणी से और प्राणों से भी ऐसे ही कर्म किये जाएँ, जिनसे दूसरों की भलाई हो।

* संसार में असफलता तो बार-बार होती ही है, उसमें निराश नहीं होना चाहिये, बार-बार प्रयत्न करते रहने से सफलता मिल ही जाती है।

* तितिक्षु पुरुष क्या नहीं सह सकते। दुष्ट पुरुष बुरा से बुरा क्या नहीं कर सकते। उदार पुरुष क्या नही दे सकते और समदर्शी के लिये पराया कौन है।

* गुरुदेव की कृपा से ही मनुष्य शान्ति का अधिकारी होता और पूर्णता को प्राप्त करता है।

* जो वेदोक्त कर्म का ही अनुष्ठान करता है, उसे कर्मों की निवृत्ति से प्राप्त होने वाली ज्ञान रूप सिद्धि मिल जाती है।

* जो ज्ञान दृढ़ नहीं होता, वह व्यर्थ हो जाता है। इसी प्रकार

ध्यान न देने से श्रवण का, संदेह से मन्त्र का और चित्त के इधर-उधर भटकते रहने से जप का भी कोई फल नहीं मिलता।

* प्राणिधारियों के जीवन की सफलता इसी में है कि वे आपका भजन सेवन करें, आपकी आज्ञा का पालन करें, यदि वे ऐसा नहीं करते तो उनका जीवन व्यर्थ है और उनके शरीर में श्वास का चलना ठीक वैसा ही है, जैसा लुहार की धौंकनी में हवा का आना जाना।

* देवता, पुण्यक्षेत्र और तीर्थ आदि तो दर्शन, स्पर्श, अर्चन आदि के द्वारा धीरे-धीरे बहुत दिनों में पवित्र करते हैं, परन्तु संत पुरुष अपनी दृष्टि से ही सबको पवित्र कर देते है।

* ध्यान से व्यक्ति को अपने शारीरिक मानसिक और भावनात्मक तनावों से मुक्ति मिल जाती है। ध्यान से स्वास्थ्य सुधरता है। ध्यान के सतत् अभ्यास से व्यक्ति को असाध्य रोगों से छुटकारा मिल जाता है।

* जब तक व्यक्ति को स्वयं का बोध नहीं हो जाता तब तक वह सत्य को नहीं पा सकता।

* आध्यात्मिक ज्ञान जहाँ मनुष्य को तत्त्वज्ञान की ओर ले जाता

है, वहाँ राजनीति को भी धार्मिक और सुख-शाँतिदायक बना देता है।

* प्राणायाम से इन्द्रियों के दोष दूर हो जाते है, इस कारण इन्द्रियों प्राणायाम से शीघ्र वश में आने लगती है।

* योग ऐसा मार्ग है, जो इस संतप्त संसार को, बिगड़ी हुई दुनिया को ठीक मार्ग पर ला सकता है।

* यह योग परम सखा है। दुःखों की निवृत्ति के लिए महोबध है।

पाणिनि कन्या महाविद्यालय से प्रकाशित व सम्पादित पुस्तकें

1. गोपथब्राह्मणभाष्यम् भाष्यकार–
   श्री पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी
2. अथर्ववेदभाष्यम् (1-4 काण्ड) ,, ,,
3. हवनमन्त्राः ,, ,,
4. सरलार्थसन्ध्या- अग्निहोत्रविधि ,, ,,
5. महर्षि दयानन्द प्रतिपादित वैदिकदर्शनम्
   सम्पा०– डा. प्रज्ञा देवी
6. काशिकायाः समीक्षात्मकम् अध्ययनम्–
   शोध प्रबन्ध- डा. प्रज्ञा देवी
7. उरुधारा नारी– आचार्या डा. प्रज्ञा देवी
8. मन्त्रमालिका ,, ,,
9. नवग्रहों का शुभागमन ,, ,,
10. वेदों के सभी शब्द यौगिक हैं ,, ,,

11. सृष्टि का प्रथम नास्तिक ,, ,,
12. स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश व्याख्यानमाला (कन्याओं द्वारा प्रस्तुत व्याख्यान संग्रह)
13. सत्यार्थप्रकाशसम्भाषणम् (भाषण प्रतियोगिता)
14. देवसभा (विद्यालय में मंचित नाटक)
15. मैं बहुत खुश हूँ– आचार्या नन्दिता शास्त्री
16. को राष्ट्रम् उद्धरिष्यति ,, ,,
17. श्रमेण तदा किम् ,, ,,
18. वैदिक निनाद (4 भागों में) प्रकाश्यमान

●

स्मरणीय

9170531217

4484 36

स्व सि. → 8894247614